सम्मेलन पत्रिका

(शोध–त्रैमासिक)

भाग	:	१०७, संख्या–२
चैत्र–आषाढ़	:	संवत् २०७९
अप्रैल–जून	:	सन् २०२२

प्रधान सम्पादक

विभूति मिश्र

सम्पादक

रामकिशोर शर्मा

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, प्रयागराज–३

Scanned with OKEN Scanner

विषय-सूची

सम्पादकीय

क्र.सं.	आलेख	लेखक	पृष्ठ
	आलेख		
१.	देशभक्त-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	श्रीनारायण पाण्डेय	७–१४
२.	निराला के काव्य में दलित चेतना	डॉ० सविताकुमारी श्रीवास्तव	१५–२१
३.	भाषा में अभिव्यक्ति एवं सम्प्रेणीयता का नया स्वरूप	डॉ० सीमा जैन	२२–२७
४.	प्रसाद काव्य का वैशिष्ट्य	डॉ० कमलेश सिंह	२८–३४
५.	नीरजा माधवकृत 'यमदीप' उपन्यास में स्त्री मुक्ति का संघर्ष	डॉ० ममता खांडल	३५–४२
६.	आदिवासी समाज में अस्मिता तलाशती स्त्री	डॉ० धर्मेन्द्र कुमार	४३–४७
७.	निराला का काव्य-वैविध्य	डॉ० कामिनी	४८–५३
८.	दलित विमर्श में स्त्री-प्रश्न	डॉ० दीपक सिंह	५४–५८
९.	हरिवंश राय बच्चन की आत्मकथाओं में वर्णित समाज का स्वरूप	अनुराधा शुक्ला	५९–६४
१०.	स्त्री स्वाधीनता का प्रश्न और महादेवी वर्मा का स्त्रीवादी चिन्तन	शिवदत्त	६५–७०
११.	अज्ञेय के यात्रा-वृत्तान्तों में सांस्कृतिक दृष्टि : विदेशी यात्राओं के विशेष सन्दर्भ में	रज्जन प्रसाद शुक्ल	७१–७८
१२.	हिन्दी साहित्य पर गाँधी दर्शन का प्रभाव	किरन मिश्रा	७९–८७
१३.	सखी भावोपासना में राधा बल्लभ सम्प्रदाय का योगदान	खुशबू वर्मा	८८–९३

Scanned with OKEN Scanner

दलित विमर्श में स्त्री-प्रश्न

–डॉ० दीपक सिंह

दलित विमर्श ने एक लम्बी दूरी तय करते हुए साहित्य और समाज के भीतर निरन्तर बदलाव की प्रक्रिया को संचालित किया है। आज दलित साहित्य एक मजबूत साहित्यिक आन्दोलन के रूप में स्थापित हो चुका है साथ ही साथ उसका दायरा भी बड़ा होता जा रहा है। शुरुआती दौर में दलित विमर्श को स्वानुभूति, सहानुभूति, स्व और अन्य जैसे मुद्दों के सहारे अपनी विशिष्टता स्थापित करनी पड़ी थी, यही नहीं स्थापित सौन्दर्य शास्त्र की चुनौती देते हुए संघर्ष को एक बड़े मूल्य के रूप में स्थापित करने का श्रेय भी उसे जाता है। जैसा कि किसी भी आन्दोलन के साथ होता है शुरुआती संघर्ष में कुछ बड़े और बाह्य सवालों को ही प्रमुखता मिलती है, भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष को हम इसके बड़े उदाहरण के तौर पर देख सकते हैं जिसमें एक लम्बे समय तक अंग्रेजों से आजादी ऐसा मुद्दा था कि किसानों, मजदूरों, दलितों, स्त्रियों आदि के मुद्दों को संघर्ष को कमजोर करने वाला माना गया और उन्हें उचित स्थान नहीं मिला। इसके पीछे कई तरह की चीजें काम करती हैं मूलतः समाज की शक्ति संरचना आन्तरिक विभेदों या संघर्षों को हर तरह से टालने की कोशिश करती है। ऐसे में वह यह हमारे आन्तरिक मामले हैं इन्हें बाद में देखेंगे' जैसे मुहावरों का इस्तेमाल कर चल रहे संघर्ष को मजबूत करने का आह्वान करती है। दलित आन्दोलन का शुरुआती तेवर भी कुछ ऐसा ही था लेकिन उसके स्थापित होने और व्यापक स्वरूप धारण करने के बाद आन्तरिक सवालों से मुँह फेरना सम्भव नहीं रह गया।

दलित आन्दोलन के भीतर दलित स्त्रियों के सवाल नये रूप में सामने आने लगे हैं। दलित विमर्श को देखने का उनका अपना अलग नजरिया है। "डॉ० अम्बेडकर न स्त्री प्रश्न को अत्यन्त महत्व का दर्जा दिया। ब्रह्मणवादी व्यवस्था के शोषण के साझा शिकार के रूप में स्त्री और दलितों की साझा मुक्ति की परिकल्पना फुले और अम्बेडकर दोनों में पायी जाती है। मराठी दलित साहित्य की अनेक लेखिकाओं ने अपने आत्मकथा में उस दोहरे शोषण का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है, जिसमें वे अछूत और स्त्री, दोनों होने के चलते दोहरे अभिशाप को झेलते हुए संघर्ष करती हैं लेकिन शुरू से ही इन लेखिकाओं में परिवारिक जीवन के भीतर-पुरुष के पक्ष में झुके शक्ति-सम्बन्धों के प्रति भी आक्रोश मिलता है। उच्चवर्णों के द्वारा दलित स्त्रियों के शोषण के साथ-साथ पारिवारिक दायरे के भीतर भी उनके शोषण का चित्र स्त्री-आत्मकाओं को भिन्न स्वर देता है। हिन्दी दलित साहित्य में हाल के वर्षों में दलित विमर्श के भीतर स्त्री-प्रश्न की विशिष्टता पर महत्वपूर्ण बहसों संचालित हुईं।"[१] हिन्दी में दलित स्त्री लेखन की बात करें तो पिछले १५ सालों में अच्छी संख्या में स्त्रियों ने रचनात्मक के साथ सैद्धान्तिक लेखक किया है। विमल थोरात, रजत रानी मीनू, रजनी तिलक, अनीता भारती, सुशीला टाकभौरे, विमल खांडेकर,

Scanned with OKEN Scanner

कौशल्या वैसंत्री सहित अन्य अनेक लेखिकाओं ने दलित विमर्श को एक नया तेवर दिया है। इन लेखिकाओं ने दलित लेखकों की तरह ब्राह्मणवाद के खिलाफ तो मोर्चा खोला ही साथ ही दलित समाज के अन्दर हो रहे स्त्री शोषण के स्वरूप को मजबूती से रेखांकित करते हुए उसके खिलाफ आवाज उठाई। दलित स्त्री की स्थिति को स्पष्ट करती हुई विमल थोरात लिखती हैं "स्त्री दलित है जाति के आधार पर, महिला होने के आधार पर और गरीब होने के आधार पर, तीन तरह के शोषण दलित महिला झेलती है।"[२] ऐसे में उसकी अभिव्यक्ति का सवाल भी अन्य लोगों की तुलना में जटिल हो जाता है। अभिव्यक्ति में पारिवारिक दबाव का सामना लगभग हर वर्ग की महिला को करना होता है लेकिन शिक्षा, आर्थिक स्वतन्त्रता, सामाजिक स्तर आदि से इसमें गुणात्मक फर्क आ जाता है तो जाहिर है कि एक दलित महिला के लिए चुनौती ज्यादा बड़ी होती है "दलित महिलाओं की समस्याएँ जिस रूप में हमारे सामने हैं, उसमें एक पारिवारिक दबाव भी है। उनको लिखने की स्वतन्त्रता वे जुटा नहीं पा रहीं हैं। इसके लिए दो चीजों की जरूरत है। एक तो दलित महिलाओं को अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभाव ग्रहण करना होगा और दूसरा पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को अपनी सोच बदलनी पड़ेगी...।"[३]

जहाँ तक अम्बेडकर की विचारधारा से प्रभाव ग्रहण करने का सवाल है वह बड़े पैमाने पर शिक्षा से जुड़ा हुआ है। हमारे देश में शिक्षा का ढाँचा भी वर्णवादी और पितृसत्तात्मक रहा है तो जाहिर है स्त्री तक उसकी पहुँच बहुत धीमी है, आर्थिक स्वतन्त्रता का मुद्दा भी काफी हद तक शिक्षा से जुड़ा हुआ है। इस अर्थ में देखें तो समाज की पितृसत्तात्मक संरचना में बदलाव की लड़ाई दलित स्त्री के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 'आज दलित महिलाओं के सामने पितृसत्ता, जातिवाद, निरक्षरता, तंगहाली और पूर्वाग्रह की चुनौतियाँ हैं। ये पूर्वाग्रह समाज से लेकर साहित्य व आन्दोलन से लेकर वैचारिक धरातल पर बिखरे पड़े हैं। दलित साहित्य जहाँ, एक ओर उसकी उच्छृंखल, कामचोर, पेटू आदि छवि गढ़ने में व्यस्त है वहीं दूसरी ओर उसकी क्षमता व योग्यता को नित नए फतवों से मढ़कर नेस्तेनाबूत करने की साजिश रच रहा है। जिस आदमी की मुक्ति का स्वप्न लेकर दलित साहित्यकार दलित साहित्य को समृद्ध कर रहा है उन्हीं मूल्यों के खिलाफ वह दलित स्त्री को परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ना चाहता है। यौन शुचिता की मूर्खतापूर्ण व्याख्याएँ करके वह उसे अपने पाँव की जूती व अपने उपभोग की वस्तु बनाकर सुरक्षित रखना चाहता है। मुझे उन दलित साहित्यकारों की बुद्धि पर तरस आता है जो बार-बार दलित लेखिकाओं और महिला सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को अहसास कराने में कोई कसर नहीं छोड़ते कि दलित महिलाँ निपट मूर्ख, अक्षम, सवर्णों की गोद में बैठकर दलित पुरुष को सताने वाली होती हैं।"[४] दरअसल दलित साहित्य के भीतर डॉ० धर्मवीर के नेतृत्व में एक धारा दलितों की सामाजिक स्थिति के लिए महिलाओं को जिम्मेदार ठहराती रही है। उसे लगता है दलित समाज की स्थिति मातृसत्तात्मक होने के कारण वह कमजोर हुआ और उसे लगातार हर का सामना करना पड़ा। बात यहीं तक नहीं रूकती वह दलित महिलाओं को कठोर अनुशासन में रखने व यौन शुचिता के कठोर पितृसत्तात्मक आग्रहों के पालन पर जोर देती है "इसका कारण क्या है कि एक कौम तीन हजार वर्षों से लगातार रहती चली आ

Scanned with OKEN Scanner

रही है? उसकी एक बार भी जीत क्यों नहीं हुई? इस लगातार हार की मेरी व्याख्या यह है कि वह मातृसत्ता और पितृसत्ता की लड़ाई थी। दलितों में मातृसत्ता थी और आर्यों में पितृसत्ता थी। यदि दलितों में भी पितृसत्ता होती तो यह हार जीत अवश्य अदला-बदली करती।"[५] डॉ० धर्मवीर की इस व्याख्या के पीछे कितना शोध है और कितना दुराग्रह समझना मुश्किल है। डॉ० अम्बेडकर ने दलितों का जिस स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के मूल्यों से पथ-प्रदर्शन किया था उसके एकदम उलट यह इच्छा सामन्तवादी पितृसत्तात्मक मूल्योंकी आग्रही बन जाती है जिसके लिए स्त्री पुरुष से कमतर और उसकी सम्पत्तिमात्र है। अजीव विडम्बना है कि शत्रु से लड़ते हुए ठीक उसके जैसा हो जाने की प्रक्रिया में यदि कोई मुक्ति की तलाश करे तो उसे कैसे परिभाषित किया जाय? दलित साहित्य जिन ब्राह्मणवादी मूल्यों के खिलाफ संघर्ष की बात करता है पितृसत्ता उससे नाभि-नाल बद्ध है लेकिन डॉ० धर्मवीर इसी मार्ग को उचित मानते हैं "दलितों को दूसरी कौमों से संघर्ष में पहले अपने घरों को जरूर देखना चाहिए। आखिर दलित जातियाँ दूसरी जातियों से मुक्ति किस-किस रूप में प्राप्त करना चाहती हैं? दूसरी जातियों के पुरुषों से अपनी बहू-बेटियों की रक्षा की बात बहुत जरूरी है पर तब क्या किया जाय जब इनकी बहू-बेटियाँ खुद दूसरी जातियों के पुरुषों के साथ भागना चाहती हैं? इसी दूसरी बात के लिए दलित-स्त्रियों पर नियन्त्रण रखना जरूरी है। दलित एक जाति के रूप में अब तक इस काम में चूकते रहे हैं। इसी से श्रमिक औरतें स्वततन्त्र होने के बजाय उच्छृंखल हो जाती हैं। वे पर पुरुषों के साथ व्यभिचार कर बैठती हैं।"[६] डॉ० धर्मवीर की यह प्रस्तावना कठमुल्ले धर्मप्रचारकों के उपदेश से अलग नहीं हैं। जब दलित महिला लेखिकाओं द्वारा इन दकियानूसी विचारों का पुरजोर विरोध किया गया तब उन्हें खारिज करने या तात्कालिक तौर पर मुल्तवी किये जाने के प्रयास किया गया। कई चिन्तकों ने तो इसे सवर्ण षड्यन्त्र की तरह दिखाने की कोशिश की "स्त्री पुरुष सम्बन्धों का विश्लेषण अलग से होना चाहिए, इसको दलित स्त्री और पुरुष के बीच संघर्ष का विषय नहीं बनाया जाना चाहिए, जिसमें प्रतिक्रियावादी या हिन्दी उत्थानवादियों को लाभ मिल सके। जो लोग दलित मुक्ति आन्दोलन के विरोधी हैं, वे जान-बूझकर दलित आन्दोलन को कमजोर करने के लिए इस तरह सवाल खड़ा करते हैं।"[७] दलित साहित्य ने ब्राह्मणवादी मूल्यों के नकार और अनुभववाद को अपने सबसे विश्वस्त औजार के रूप में विकसित किया है। इसी के सहारे उसने अब तक की अपनी सर्वश्रेष्ठ कृतियाँ दी हैं जूठन से लेकर मुर्दहिया तक इस सिलसिले को देखा जा सकता है लेकिन जब एक स्त्री इन्हीं औजारों के सहारे अपनी स्वतन्त्र अभिव्यक्ति रची है तो उसे समस्या होती है। कौशल्या बैसंत्री लिखती हैं "पुत्र, भाई, पति सब मुझ पर नाराज हो सकते हैं परन्तु मुझे भी तो स्वतन्त्रता चाहिए कि मैं अपनी बात समाज के सामने रख सकूँ। मेरे जैसे अनुभव और भी महिलाओं को आये होंगे, परन्तु समाज और परिवार के भय से अपने अनुभव समाज के सामने उजागर करने से डरती और जीवन भर घुटन में जीती हैं। समाज की आँखें खोलने के लिए ऐसे अनुभव सामने लाने की जरूरत है।"[८] एक बात तो स्पष्ट है कि दलित समुदाय के भीतर पितृसत्ता के लक्षण गहरे हैं। राजनीति में भी देखें तो बहन मायावती जैसे एकाध उदाहरणों के

Scanned with OKEN Scanner

अतिरिक्त दलित महिलाओं की भागीदारी न्यूनतम है। सामाजिक राजनीतिक जीवन की परिणति साहित्यिक दुनिया में भी दिखाई पड़ती है "दलित स्त्रियों को अलगाव में डालने की परिघटना राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है उदाहरण के लिए सांस्कृतिक क्षेत्र में दलित स्त्रियों ने साहित्यिक वर्चस्व प्राप्त करने के लिए दलित पुरुष लेखकों की आलोचना की है। दलित पुरुष लेखक दलित स्त्रियों के साहित्यिक उत्पादन को गम्भीरता से नहीं लेते और खारिज करते हैं। दलित स्त्रियाँ सही सवाल उठाती हैं कि उन्हें क्यों दलित साहित्यिक सम्मेलनों और संस्थाओं में उच्च पदों से वंचित रखा जाता है। उनका यह विरोध तीन बातों को सामने लाता है–(१) सिर्फ जाति अथवा वर्गीय पहचान ही नहीं बल्कि लैंगिक अवस्थिति भी किसी घटना की वैधता को निर्धारित करती है। (२) दलित पुरुष अपनी स्त्रियों के प्रति वैसे ही क्रियाकलापों का पुनरुत्पादन करते हैं जिन्हें उनके उच्चजातीय शत्रुओं ने उन पर अधिकार करने के निमित्त प्रयोग किया था। (३) दलित स्त्रियों के अनुभव यह दिखाते हैं कि दलितों के भीतर भी अवस्थितिगत संघर्ष जरूरी है।"[९] दरअसल दलित महिलाओं की अभिव्यक्ति को कितना भी खारिज करने की कोशिश की जाय अपनी अन्तर्वस्तु में वह बहुत प्रखर हैं, उनका तेवर भी बहुत आक्रामक है शायद यही करण है कि दलित लेखकों का एक हिस्सा उससे सहज नहीं रह पाता। उसे लगता है दलित विमर्श के भीतर उठा यह स्त्री स्वर उसके समूचे संघर्ष को कमजोर करने वाला है। दूसरे वह स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व, यौनिक स्वतन्त्रता आदि जैसे असुविधाजनक सवालों से टकराना नहीं चाहता और जहाँ टकराता है वहाँ डॉ० धर्मवीर की तरह एक नए ब्राह्मणवादी ढाँचे की संरचना करता हुआ दिखाई पड़ता है। इसके विपरीत यदि स्त्री सवालों को सकारात्मक रूप से देखा जाय तो उसने दलित साहित्य के दायरे व अभिव्यक्ति के स्वरूप को विस्तृत भी किया है और समृद्ध भी किया है। शुरुआती दौर में दलित साहित्य के अस्तित्व को लेकर ही सवाल खड़े किये गए थे लेकिन आज हम जानते हैं कि जूठन, मुर्दहिया जैसी तमाम अभिव्यक्तियों ने हिन्दी साहित्य के दायरे को विस्तृत किया है, उसे अनछुए अनुभव प्रदान किये हैं ठीक यही बात दलित स्त्री लेखन के लिए भी सत्य है।

सन्दर्भ-सूची

१. प्रणय कृष्ण–उत्तर औपनिवेशिकता के स्रोत और हिन्दी साहित्य, हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रथम संस्करण २००८, पृ० ३२३–३२४

२. विमल थोरात–हंस, वर्ष १९ अंक–१, अजय नावरिया और सुदेश तनवर को दिया गया साक्षात्कार, अगस्त२००४, पृ० २३०

३. वही

४. अनीता भारती–दलित स्त्री जीवन से जुड़ी कहानियाँ, लोकमित्र प्रकाशन, दिल्ली, २०१२, पृ० १४–१५

५. सम्पा०–डॉ० श्योराज सिंह बैचेन, डॉ० रजत रानी मीनू–दलित दखल, डॉ० धर्मवीर का लेख : मूल समस्या स्त्री को लेकर, श्री साहित्यिक संस्थान, गाजियाबाद, २००१, पृ० ६८

६. सम्पा०–राज किशोर–हरिजन से दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ०

Scanned with OKEN Scanner

७. सम्पा०-डॉ० श्योराज सिंह बैचेन, डॉ० रजत रानी मीनू : दलित दखल : डॉ० विमलकीर्ति का लेख : दलितपन सामाजिक व्यवस्था की देन है और साहित्यिक संस्थान, गाजियाबाद, २००१, पृ० ९२
८. कौशिल्या बैसन्त्री–दोहरा अभिशाप, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, १९९९, भूमिका से।
९. गोपाल गुरु–इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, अंक अक्टूबर १४ से २१, १९९५

पता:-
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
राजीव गाँधी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़

Scanned with OKEN Scanner